# विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३३ | कार्तिक पूर्णिमा | १३ नवम्बर १९८९ | वर्ष १९ अंक ५


## धम्मवाणी

**नमो ते सब्बदस्सावी, नमो ते करुणाकर।**
**नमो ते तिण्णसंसार, नमो ते अमतं दद॥**

— खेमा थेरी अपदानं - ३६२

नमस्कार है तुम्हें हे सर्वदर्शी सर्वज्ञ! नमस्कार है तुम्हें हे करुणाकर! नमस्कार है तुम्हें हे भवतीर्ण! नमस्कार है तुम्हें हे अमृत के दाता!

---

## खेमा की बुद्धवंदना

भगवान एकांत प्रिय थे। समय समय पर किसी शांत एकांत स्थान पर ध्यान करने चले जाते थे। यह देखकर ब्राह्मण जानोश्रेणि को भ्रम हुआ कि विमुक्त हुए भगवान बुद्ध को किस बात की कमी है कि उन्हें अब भी बार बार एकांत में ध्यान करना पड़ता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान ने कहा—

"ब्राह्मण, दो बातों के लिए मैं एकांत सेवन करता हूं। इसी दृश्यमान शरीर के सुख-विहार के लिए और आगे आनेवाली जनता पर अनुकम्पा करते हुए उनके मार्गदर्शन के लिए जिससे वे मेरा अनुसरण करें और सुफलभागी हों।"

इसी कारण अर्हंत हो जाने पर भी अनेक भिक्खू, भिक्खुणियां समय समय पर एकांत अरण्य में जाकर ध्यान करते थे। महाप्रज्ञा खेमा भी ऐसे ही एकांत ध्यान के लिए किसी अरण्य में गयी।

गृहस्थ जीवन की अतीव रूपवती खेमा अब ब्रह्मचारिणी का जीवन जीने लगी तो उसके चेहरे पर धर्मतेज का निखार आया। वह और अधिक रूपवती दिखने लगी। मार ने उसके भूतकाल के जीवन को ध्यान में रखकर उसे कामभोग की ओर पुनः आकर्षित करने का मिथ्या प्रयत्न किया। वह एक अत्यंत सुन्दर युवक का रूप धारण कर उसके समीप गया और उसे लुभाने की चेष्टा करते हुए बोला—

**दहरा त्वं रूपवती, अहं पि दहरो युवा।**

ए रूपवती! तू भी युवा है और मैं भी युवा हूं!

जानता है उसे कभी वाद्य-गायन का बहुत शौक था। अतः लुभावने शब्दों में कहता है—

**पञ्चङ्गिकेन तुरियेन, एहि खेमे रमामसे॥**

आओ खेमा! हम पांच प्रकार के वाद्य-संगीत का आनंद लेवें और कामभोग में रमण करें!

दुष्ट कामदेव के इस कुत्सित आमंत्रण का उस परमविमुक्ता अर्हंत साध्वी पर क्या असर पड़ता भला? उसने धर्ममय उत्तर दिया—

**इमिना पूतिकायेन, आतुरेन पभङ्गुना।**
**अट्टियामि हरायामि, कामतण्हा समूहता॥**

मैंने कामतृष्णा जड़ से उखाड़ दी है। इस प्रभंगुर व्याधिपुंज गंदे शरीरके कामभोग के प्रति मेरे मनमें घृणा जागती है, लज्जा जागती है।

**सत्तिसूलूपमा कामा, खन्धासं अधिकुट्टना।**
**यं त्वं कामरतिं ब्रूसि, अरती दानि सा मम॥**

देख, यह काम शक्तिशूल याने भाले बर्छी के समान बींधनेवाला है। यह कामस्कन्ध जल्लाद की तलवार सदृश काटनेवाले हैं। जिसे तू कामरति कहता है वह मेरे लिए घृणा पैदा करनेवाली है।

**सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोखन्धो पदालितो।**
**एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तक॥**

मैंने काम भोग के समस्त नंदीराग को नष्ट कर दिया है। अपने भीतर जागे हुए प्रज्ञा के प्रकाश से अविद्या के सारे अंधकार-समूह को विदीर्ण कर दिया है। प्राणियों को कामभोग में और उन्हें जन्म-मरण के चक्र में उलझाए रखने वाले अंतक! तू समझ ले, मैंने तुझे ही पराजित कर दिया है। तेरा ही अंत कर दिया है।

उस कामजयी जीवनमुक्त बुद्धपुत्री को दुष्ट मार कहां लुभा सकता था भला?

वह खूब जानती थी कि इस कामदेव मार का वार कहां काम करता है? जो लोग अपने भीतर यथाभूत सत्य की विपश्यना करके सारे काम-संस्कारों का, भव-संस्कारों का उन्मूलन कर चुके उन पर इसका वार काम नहीं करता। ऐसे लोग जो यथाभूत ज्ञानदर्शन से तो वंचित रह गए हैं और भिन्न भिन्न नक्षत्रों को नमस्कार करते हैं, अग्नि-परिचर्या करते हैं और समझते हैं कि इनके कारण हम शुद्ध हो गए, विकार विमुक्त हो गए, ऐसे लोगों पर मार का वार खूब चलता है। तभी कहती है—

**नक्खत्तानि नमस्सन्ता, अग्गिं परिचरं वने।**
**यथाभुच्चमजानन्ता, बाला सुद्धिममञ्ञथ॥**

ऐसे मूढ़जन जो यथाभूत सत्य की विपश्यना करना तो जानते नहीं, बल्कि नक्षत्रों को नमस्कार करते हैं अथवा वन में जाकर धूनि रमा कर अग्नि-परिचर्या करते हैं और इसीसे अपने चित्त को कामराग के मैल से शुद्ध हुआ मानते हैं,

ऐसे लोगों पर ही तुम्हारा वार चलता है। वर्षों की कर्मकाण्डी तपस्या के बाद भी वे तेरे वार से स्खलित हो जाते हैं, तेरे जाल में फँस जाते हैं। ऐसे मूढ़जनों से मेरा कोई मुकाबला नहीं। मैंने तो बुद्ध को नमस्कार किया है, किन्हीं नक्षत्रों को नहीं, किन्ही अग्नि अर्चियों को नहीं।

और बुद्ध को नमस्कार कैसे किया जाता है? यह एक बुद्धपुत्री खूब जानती है। पंचांग या साष्टांग प्रणाम कर लेना ही बुद्ध को किया गया सही नमस्कार नही है। बुद्ध के शासन याने उनकी शिक्षाओं को पूरा कर लेना ही सही बुद्ध वंदना है। शुद्ध शील का पालन करते हुए कल्पना-विहीन सत्य के आलंबन से चित्त को एकाग्र करना और ऐसे एकाग्र चित्त से अपने भीतर नाम और रूप याने चित्त और शरीर-स्कन्ध के प्रपंच की यथाभूत विदर्शना करते हुए अन्तर्मन की गहराईयों तक के सारे अनुशय-क्लेशों को दूर करके, सारे राग से विरक्त होकर जन्म-मरण के भवदुःख से पूर्णतया विमुक्त हो जाना ही बुद्धशासन को पूरा कर लेना है और यही बुद्ध को किया गया सही नमस्कार है। इसी की ओर संकेत करती हुई बुद्धपुत्री खेमा कहती है—

**अहं च खो नमस्सन्ति, सम्बुद्धं पुरिसुत्तमं।**
**पमुत्ता सब्बदुक्खेहि, सत्थुसासनकारिका ति॥**

मैंने भी नमस्कार किया है (परंतु अग्नि अथवा नक्षत्रों को नहीं।) बल्कि उस परम पुरुषोत्तम भगवान सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार किया है और सही नमस्कार किया है! क्योंकि उन भगवान शास्ता के शासन को पूरा कर लिया है और सभी दुःखों से पूरी तरह विमुक्त हो गयी हूं!

साधकों, साधिकाओं आओ! हम भी इसी प्रकार उन महाकारुणिक शास्ता के शासन को पूरा करें। उन भगवान सम्यक् सम्बुद्ध को इसी प्रकार सही नमस्कार करें और अपना कल्याण साध लें!

कल्याणमित्र,
**स.ना.गो.**

***

## सतयुग की चर्चा

(२)

**पूर्णिमा पकवासा, संपादिका 'शक्तिदल'**

'महासतिपट्ठान सुत्त' का उपदेश देकर भगवान ने साधकों पर महान उपकार किया। इस सुत्त में भगवान बुद्ध की वाणी शब्दशः सुरक्षित रही है। परंतु इसको समझकर अमल में उतारने के लिए अपूर्व धैर्य व परिश्रम अपेक्षित है।

पहले लेख में उल्लेख की हुई चार प्रकार की विपश्यना करते करते साधक में खूब जागरूकता आ जाती है। इस साधना में होने वाली अनुभूतियां अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। यदि भगवान की वाणी अनुभूति के स्तर पर समझ में नहीं आयी तो फिर केवल बुद्धिविलास ही होगा। इस साधना में शील धर्म का पालन मन को वश में करने के लिए एक बड़ा महत्त्व का साधन है। आंतरिक सत्य की भावनामयी प्रज्ञा को जगा देता है, परंतु इस सच्चाई पर प्रतिष्ठित होना जरूरी है। इस प्रतिष्ठा अर्थात आरूढत्व से सूक्ष्म सत्य सामने आ जाता है।

इसके पहले 'भासमान सत्य' प्रगट होता है, जिसमें आभास होता है कि अमुक वस्तु ऐसी ही है, जैसी कि दिखाई देती है। परंतु साधना करते करते भासमान सत्य को बींधने का काम शुरू हो जाता है और बींधते बींधते असली सत्य सामने आ जाता है। यह स्थिति तब आती है जब कि प्रज्ञा अपना काम शुरू करती है। यों प्रतिभेदन होते होते अन्दर के भासमान सत्य तथा अन्य आवरणों का स्वतः विसर्जन शुरू हो जाता है। अगर ठीक तरह से विश्लेषण करने लगे व ठीक समझदारी से काम करते रहे तो इस कल्याणकारी विधि के प्रति खूब आस्था जागती है। तब लगता है 'एकायनो मग्गो' याने मुक्ति पाने के लिए यही एक मात्र मार्ग है।

श्वास-प्रश्वास पर स्मृति (जागरूकता) रखने का काम आगे बींधने की क्रिया में बहुत लाभदायी होता है। जो व्यक्ति प्रबुद्ध होता है, उसका प्रारंभ तो इन्ही साधनों से होता है। जो व्यक्ति प्रबुद्ध-अर्हंत बनता है, जिसने परम सत्य का साक्षात्कार किया है उसने भी साधना के प्रारंभ में स्थूल सत्य के आलम्बन से ही काम शुरू किया। वहां से आरम्भ करके धीरे धीरे भेदन क्रिया प्रक्रिया करते करते अंतिम सत्य तक पहुँच पाया। यह परम सत्य जिसको प्राप्त हुआ, अनुभव किया, अब मुक्ति उनके लिए स्वयं अनुभव की बात हो गयी। ऐसे महामानव में जगत के दुखी जीवों के प्रति करुणा का भाव प्रगट होना स्वाभाविक है। वह मुक्ति का सुख भोगने के लिए अरण्यवास नहीं करते। वे आते हैं जनपद के बीच और मुक्ति की यह अलौकिक विधा बांटते हैं, सबको वैसा करने का मार्गदर्शन देते हैं। जिस-जिसने मार्गदर्शन पाकर धर्मपथ पर चलना शुरू किया वे भाग्यशाली हैं। इन प्रबुद्धों की लोगों को समझाने की रीति भी खूब सटीक होती है। वे लोगों से प्रश्न करते कि दुख है क्या? आप लोग दुख का अनुभव करते हो क्या? तो फिर अब खाते पीते उठते बैठते अनुभव करो कि सारा शरीर एक परमाणु का पुंज है। इनके बीच में पोल ही पोल है। भले एक राई के कण जितनी जगह में करोड़ों की संख्या क्यों न समा जाय फिर भी परमाणु के बीच पोल है। ये बुदबुदे जैसे हैं। यह सत्य हमारे संत विज्ञानियों ने हजारों वर्ष पहले शोध कर इसका साक्षात्कार किया था और साधना करके उससे मुक्ति का मार्ग ढूंढ निकाला। जब कि आज के आधुनिक वैज्ञानिकों ने यही सत्य कि मानव शरीर केवल बुदबुदों का पुंजमात्र है, यंत्रों की सहायता से खूब परिश्रम करके शोधा। इस यंत्र को नाम दिया— **'चैम्बर आफ बबल्स'**। 'शरीर केवल बुदबुदों का पुंज है' यह शोध कर के यहीं रुक गया इससे आगे नहीं बढ़ पाया।

इस सत्य को जान कर उसे "संपजञ्ञ" (सम्प्रज्ञान) याने सम्यक् रूप से समझ कर हर क्षण उसका अनुभव करने से अपने आप विपश्यना शुरू हो जाती है। साधक को हर पल सजग रहना बहुत जरूरी है। इस संपजञ्ञ की जानकारी से शरीर के भीतर क्या प्रपंच चल रहे हैं वह समझ में आते हैं। यह सब केवल बुद्धि के स्तर पर ही समझ में नहीं आता परंतु प्रज्ञा के स्तर पर स्वानुभूति से इसकी जानकारी होती है। शरीर के प्रत्येक भाग पर होनेवाली संवेदनाएं और उससे होनेवाली विकारोंभरी प्रतिक्रियाएं आदि सूक्ष्म सूक्ष्म बातें स्पष्ट महसूस होती जाती हैं। शरीर पर आनेवाली कोई भी संवेदना बिना

जानकारी के छूट न जाय। साथ साथ यह भी कि, यह सदैव रहनेवाली नहीं है; यह भी जानना, समझना आवश्यक है। संवेदनाओं का आना जाना होते ही रहता है पर उससे बिलकुल प्रभावित नहीं होना है। जैसे आकाश में भिन्न भिन्न प्रकार की हवाएं चलती रहती हैं वैसे ही यह संवेदनाएं भी आती रहती हैं। इनकी मात्र जानकारी ही रखनी है।

इस प्रकार की सजगता तथा एकाग्रता अगर प्रज्ञा के साथ नहीं है तो वह केवल किसी सरकस के खिलाड़ी के जैसे बन कर रह जाएगी। सरकस में अंग-कसरत व अन्य खेल करती हुई लड़की अपना काम खूब एकाग्रता व सजगता के साथ करती है और उसके लिए उसने काफी परिश्रम किया होता है– परंतु वह केवल व्यायाम ही रहता है। वहां सजगता व एकाग्रता जरूर है परंतु मुक्त होने की न तो भावना है न अनित्य बोध की आध्यात्मिकता। इसलिए यह बात शरीर तक ही सीमित रह गई, मन सुधारने की साधना नहीं हुई और वह केवल सरकस की खिलाड़ी ही रह गई। एकाग्रता द्वारा जीवन की मुक्ति भी हो सकती है ऐसी महत्त्वपूर्ण बात का उसको भान भी नहीं। एकाग्रता व सजगता जैसी सिद्धि पास में होते हुए भी वे जहां के तहां रह जाते हैं। मुक्ति के मार्ग पर आरूढ़ नहीं हो सकते।

प्रज्ञा के साथ एकाग्रता व सजगता से अनुभूति के स्तर पर जानकारी होते ही सारे शरीर में उत्पाद- व्यय की रामलीला दिखने लगती है। अणु परमाणु कैसे उत्पन्न होते हैं और थोड़ी ही देर में विलीन हो जाते हैं—इनका अनुभव करना बड़ा रसप्रद होता है। ऐसे ही देखते देखते, अनुभव करते करते अंदर दबे विकार उभर कर ऊपर आते हैं। अंतरमन (अनकॉनश्यस माइंड) के अंदर के विकारों की उदीरणा और निर्जरा होने लगती है। शरीर में जो जो संवेदना जागती है सुखद हो या दुःखद, उसके प्रति उपेक्षाभाव तथा समानभाव रखना साधक सीखने लगता है। अंतरमन के दबे संस्कारों की जितनी उदीरणा-निर्जरा होती है उतना सुख मालूम होता है। वैसा सुख सामान्य इन्द्रिय जगत में कभी नही मिल पाता, ऐसी दृढ़ प्रतीति होती है। इस दिव्य सुख को कैसे समझे? कैसे वर्णन करे? इसका वर्णन करने के लिये भाषा हमेशा कंगाल मालूम पड़ती है। जगत की कोई भाषा इतनी समर्थ नही है कि जो इस अतीन्द्रिय दिव्य सुख की अनुभूति को इन्द्रिय जगत की वाणी में वर्णन कर सके। इसके आगे जो इन्द्रियातीत निर्वाणिक सुख होता है उसका तो कहना ही क्या? यह अनुभूति होने के बाद, अनुभव करने वाला गूंगा हो जाता है। ''गूंगे के गुड़ नी जेम बनी जाय रे।'' जो नहीं जानता वह ज्यादा बोल सकता है और ज्यादा बोलने लगता है तो समझना चाहिये कि इसके पल्ले कुछ नहीं पड़ा। परंतु जिसे सही साक्षात्कार हुआ है वह ''नेति नेति'' कह कर रुक जाता है। जो बात अनुभव से ही जानी जा सकती है वह बुद्धि द्वारा कैसे समझ में आएगी? जिसने यह जाना वह वीतराग हो गया, अन्यथा थोड़ा बहुत जान लिया और सब कुछ जान लेने की भ्रांति में पड़ गया तो ऐसा व्यक्ति कही बीच की धर्मशाला में फँस गया। लक्ष्य तो दूर रह जाता है और मनुष्य भ्रांति में भटक जाता है। राजमार्ग छोड़कर अंधेरी गलियों में ही भटकता है, कहीं नहीं पहुँचता। यह सच्चाई कहीं बाहर शोध करके नहीं उपलब्ध होगी। बाहरी बहिर्मुखता से तो केवल भटकना ही होता है, भ्रांति ही भ्रांति मिलती है। सच्चाई की खोज इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर अंतर्मुखी होकर करनी होती है जिससे भ्रम टूट जांय। सत्य को अनुभूति के स्तर पर उतारने से ही भ्रांति टूटती है। इसमें भी खास महत्त्व प्रतिभेदन क्रिया को देना है जिससे वास्तविक लाभ होता है। यह काम मात्र श्रद्धा से नहीं होगा। धैर्य के साथ पुरुषार्थ तथा समतापूर्वक काम करने से ही सिद्ध होगा।

यह साधना **''आनापान सति''** से ही शुरू की जाती है। इस प्रकार एक छोटी सी जगह पर उदय-व्यय की अनुभूति होने लगती है। धीरे धीरे यह अनुभूति सारे शरीर में होने लगती है और फिर खाते-पीते, उठते-बैठते हर अवस्था में इसे अनुभव करते हुए वर्तमान में रहने की आदत डालते हैं। इस प्रकार **''संपजञ्ञं''** यानि सदा जाग्रति की अवस्था निर्माण होती है। उस समय चिंतन शुद्ध होता है। कामवासना तथा अन्य विकार विकृतियों के प्रतिकूल मानस वासना-विकारमुक्त होता है। केवल कोरी श्रद्धा अथवा बुद्धि के बल पर कोई मुक्त नहीं हो सकता। सब की सब अनुभूतियों को प्रज्ञा से देखने का अगाध परिश्रम, अभ्यास तथा पुरुषार्थ करते करते सुखद और दुःखद वेदनाओं के अनित्य स्वभाव की बात समझ में आती है। इससे भवचक्र का आगे बढ़ना रुकता है, मिथ्या भ्रम-भ्रांति से छुटकारा होता है।

इस साधना के आवश्यक अंग के रूप में हमें अपनी सब मान्यताओं तथा विचारों को ''निरामिष'' बनाना पड़ेगा। ''सामिष'' नहीं। ''मैं, मेरा, तेरा'' आदि राग - द्वेषयुक्त विचार सभी सामिष हैं और राग-द्वेष से मुक्त विचार ही ''निरामिष'' हैं।

**''वेदना पच्चया''** याने वेदना के आधार पर बंधन बँधते हैं और उन्हीं वेदनाओं के आधार पर बंधन कटते भी हैं। बाहरी आलम्बनों की घटना से प्रभावित न होते हुए सतत-बोधि को जागरूक रखने से नए राग-द्वेष पैदा नहीं होते और अंतर्मन के मूल तक बोधि जागृत होती चली जाती है।

यह जड़ों की बात संवेदना के द्वारा ही समझ में आती है। उसके चित्त-व्यापार को भी जानना जरूरी है। अपनी परंपरागत मान्यताओं के प्रति अगर दुराग्रह नही है तो सच्ची विपश्यना होगी। **'' आतापी संपजानो सतिमा''** होने के लिए खूब परिश्रम करना होगा तथा स्मृतिपूर्वक महान संग्राम करना होगा। हम अपनी किसी मान्यता के कारण आलू, प्याज खाना छोड़ सकते हैं, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कुछ मिलता मिलाता नहीं। इसके बदले यदि राग-द्वेष रूपी अग्नि में ईंधन डालना बंद करें तो लाभ निश्चितरूप से होगा। इसलिए जो वास्तव में करना है, जिससे लाभ होता है इसे छोड़कर यदि भ्रामक मान्यताओं के कारण विपरीत दिशा की ओर जाते हैं तो भटक जाते हैं।

अंतर्मन का विश्व कितना विशाल है इसका भान तब होता है जब हम साधना में प्रमाणिकता व पुरुषार्थ से आगे बढ़ते हैं। तब हम नतमस्तक नमन करते हैं। तब एक विचार मन में आता है कि मनुष्य कितनी बड़ी समृद्धि का स्वामी है? इतनी बड़ी समृद्धि हमारे अंदर होने के बाबजूद हम छिछली समृद्धि को पाने के लिए बाहर भटकते हैं। जन्म जन्मान्तरों तक भटकते ही रहते हैं। इस भटकन का अंत

विपश्यना साधना में समाया हुआ है। —क्रमशः ....

(गुजराती मासिक 'शक्तिदल' के जनवरी, १९८८ के अंक से साभार)

२९, हुंगरसी रोड, बालकेश्वर, बम्बई-४००००६.

***

## साधकों के उद्गार

श्री कुमुदचन्द्र छेड़ा बम्बई हाइकोर्ट के वकील हैं। उन्होंने विपश्यना के ३ शिविर किये हैं। वे लिखते हैं कि विपश्यना साधना द्वारा मैं बहुत शांति महसूस करता हूं। जीवन की समस्याओं के समाधान में पहलेसे अधिक कुशलता प्राप्त हुई है। व्यवहार-कौशल्य बढ़ा है।

***

श्री मणिभाई पारेख अवकाश प्राप्त पोस्टमास्टर हैं। वे पिछले १५ वर्षोंसे विपश्यी साधक हैं। वह लिखते हैं कि इस साधना से क्रोध के स्वभाव में बहुत सुधार हुआ है। क्रोध कम आता है और आता है तो अधिक देर तक टिकता नहीं। लोगों के साथ बर्ताव करने में बहुत मधुरता आई है। पहले किन्ही सामाजिक संस्थाओं में पदाधिकारी बनने की लालसा रहा करती थी अब समाप्त हो गई है। जिन लोगों के साथ मेरे संबंध तनावपूर्ण थे, अब सुधर रहे हैं।

***

श्री भैया साहब सोमकुवर, भारत सरकार के आयकर अधिकारी हैं। पिछले १० वर्षों में उन्होंने १० दिनों के ११ शिविर कर लिए हैं। वह लिखते हैं कि मेरे जीवन-व्यवहार में और समस्याओं के समाधान में काफी सुधार हुआ है। व्यसन से सर्वथा मुक्ति मिल गई है। अब पूर्ण विश्वास होगया है कि विपश्यना ही विमुक्तिका एक मात्र मार्ग है.

### शरीर-च्युति

नाशिक के श्री महेश नाथानी की धर्मपत्नीकी श्रीमती नयनतारा जो कि कैंसर जैसे रोग से पीड़ित होने पर भी विपश्यना करते हुए जिस साहस और धैर्य के साथ जीवन जिया, उसी प्रकार मृत्यु को भी वरण किया। गत १ सितम्बर को मृत्यु के समय उनकी सजगता और समता देखकर लोग आश्चर्यचकित थे। विपश्यी परिवार उनकी सद्गति की मंगल कामना करता है।

## दोहे धरम के

संप्रदाय होवे प्रमुख, धर्म गौण जब होय।
तभी धर्म के नाम पर, खून खराबा होय॥

गले माल, माथे तिलक, भरम धरम का होय।
भेष-भुलावे में पड़े, धरम रतन दे खोय॥

कर्मकांड को धरम जो, समझ रहा नादान।
मिले कहां से धर्म फेर, धर्म पड़ा निष्प्राण॥

जहां दार्शनिक मान्यता, प्रज्ञा प्रमुख हो जाय।
होवे बुद्धि विलास ही, धर्म लाभ छुट जाय॥

वस्त्र त्यागना सरल है, कठिन त्यागना राग।
वस्त्र तजे ना मुक्ति है, मुक्त होय तज राग॥

प्रज्ञा शील समाधि ही, शुद्ध धर्म का सार।
जो धारे सो धन्य हो, होय दुखों के पार॥

**मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास**
बंगलो रोड, जवाहर नगर,
दिल्ली-११०००७.
की मंगल कामनाओं सहित

## दूहा धरम रा

मुक्त हुवै जदि सहज ही, कर लांबो उपवास।
तो बै तरग्या जो बण्या, छप्पनियै रा ग्रास॥

मूंड मुडायां बावळा, मिलै मोक्ष को द्वार!
तो मुक्ति रै पथ भरै, भेड़ां तणी कतार॥

दाढ़ी मूंछ बढ़ाय कर, जदी मुक्त हो जाय।
तो बकरा संसार का, सहजां ही तर जाय॥

नगन रयां मुकती हुवै, किसी बावळी बात।
तो मुकती पथ पर भरै, पसुआं तणी जमात॥

मुक्ति मिलै जदि देह पर, मळ्यां धूळ अर राख।
तो जग का सगळा गधा, मुक्त हुवै बेबाक॥

गांठ्यां राग र द्वेस री, भीतर बँधती जांय।
बारै बदल्यै भेस सूं, गांठ्यां किम खुल पाय?

**मेसर्स गो गो गारमेन्ट्स**
३१/४२, भांगवाडी शॉपिंग ऑर्केड, १ला माला,
कालबादेवी रोड, बम्बई-४००००२
की मंगल कामनाओं सहित

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३. दूरभाष : ८६

कार्तिक पूर्णिमा मुद्रण स्थान : फ्रेन्ड्स प्रिन्टरी, १९१, डिमटिमकर रोड, नागपाड़ा, बम्बई-४००००८. १३ नवम्बर ८९

वार्षिक शुल्क रु. १०/-
आजीवन शुल्क रु. १००/-

'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं. NS(M) 16/89

Licence No. NS 18
to post without prepayment

प्रेषक :
**विपश्यना विशोधन विन्यास**
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)